शोध संचयन
SHODH SANCHAYAN
ISSN 2249-9180 (Online)
ISSN 0975-1254 (Print)
RNI No.: DELBIL/2010/31292

Bilingual journal of Humanities & Social Sciences

Half Yearly

Vol-3 Issue-1
15 Jan-2012

पर्यावरणीय चिन्तन और उत्तराखण्ड के लोक सांस्कृतिक सरोकार

डॉ0 प्रीति आर्या

असि0 प्रो0-हिन्दी, एस0 एस0 जे0 परिसर, अल्मोड़ा

www.shodh.net

पर्यावरणीय चिन्तन और उत्तराखण्ड के लोक सांस्कृतिक सरोकार

विषय संकेत:- लोक संस्कृति, पर्यावरण

अंधा-धुंध नगरीय विकास की प्रक्रिया में नयी पीढ़ी का ध्यान पर्यावरण से धीरे-धीरे हटने लगा था, किन्तु विगत पर्यावरणीय समस्याओं ने लोगों का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट किया है। आज की नगरीय संस्कृति में हमने ऋतुओं एवं प्राकृतिक चक्रों से अपना रिश्ता विच्छेदित कर लिया है। ऋतु चक्र के अनुसार उनसे तादात्म्य रखने वाले जीवन व्यवहारों के अभाव में पर्यावरणीय समस्याएँ दिन-प्रतिदिन बढ़ती ही रहेंगी। प्रस्तुत शोध पत्र के माध्यम से उत्तराखण्ड में वर्षभर मनाएँ जाने वाले व्रत, त्यौहार तथा पर्वोत्सवों का जलवायु परिवर्तन के साथ तादात्म्य स्थापित करते हुए पर्यावरणीय संरक्षण के प्रति किस प्रकार चेतना का हस्तान्तरण होता है, को समझने का प्रयास किया गया है।

पर्यावरण से आशय उन सभी परिस्थितियों से है जो चारों और व्याप्त हैं तथा जीव और जीवन के लिए अनुकूल वातावरण का निर्माण करती हैं। पर्यावरण के किसी भी एक घटक के असंतुलन से पर्यावरणीय संकट उत्पन्न हो जाता है। इसका सीधा प्रभाव उस स्थान की जलवायु और जीवन पर पड़ता है। पर्यावरण का स्वरूप भौगोलिक दशाओं और जलवायु पर निर्भर करता है। अत: भौगोलिक परिवेश और जलवायु के बीच गहरा सम्बन्ध है। ये दोनों एक दूसरे के पूरक हैं। (क्योंकि दोनों ही एकाकार होकर मानव और उसकी जीवन शैली को महत्वपूर्ण आयाम प्रदान करते हैं)। ''लोक का अभिप्राय जनसमुदाय से होता है। सामान्य दृष्टि से लोक एक भौगोलिक सीमान्तर्गत मानव समाज की भावनाओं, विचारों, परम्पराओं एवं मान्यताओं का ऐसा पुंज है, जिससे उस क्षेत्र तथा समाज विशेष की पहचान हो सकती है। बिना लोक के संस्कृति की कल्पना नहीं की जा सकती अर्थात् संस्कृति ही लोक विशेष की प्रतीक है।''[1] भारत की समस्त लोक संस्कृतियाँ समान उद्देश्य के कारण समग्र रूप से राष्ट्रीय संस्कृति के निर्माण में परस्पर सौहार्द्र भाव से योगदान करती हैं, इन्हीं संस्कृतियों में उत्तराखण्ड की संस्कृति भी अपना विशिष्ट स्थान रखती है। उत्तराखण्ड की संस्कृति में अनेक आदिम संस्कृतियों का समन्वय है। यह सम्मिश्रण यहाँ के रीति रिवाजों, परम्पराओं, संस्कारों, विश्वासों, बोलियों एवं धर्मिक मान्यताओं में भी परिलक्षित होता है।

भौगोलिक दृष्टि से उत्तराखण्ड में जहाँ एक और पहाड़ी नदी घाटी क्षेत्र है तो दूसरी और मैदानी क्षेत्र भी इनमें तराई-भाबर अर्थात् मैदानी क्षेत्र एंव नदी घाटियों की जलवायु उष्ण तथा ऊँचे शिखरों पर समय-असमय शीत व बर्फीली जलवायु का चक्र दृष्टिगत होता है। उत्तराखण्ड का बड़ा भू-भाग वनों से आवृत होने के साथ विश्व का प्रमुख वानस्पतिक क्षेत्र भी है। वृक्षों एवं वनस्पति की अधिकता और विविधता यहाँ की जलवायु को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करती है। उत्तराखण्ड को देवभूमि, देवस्थली एवं तपोभूमि के नाम से अलंकृत करने के पीछे भारतीय मनीषियों का एक दृष्टिकोण पर्यावरणीय भी रहा होगा।

पर्यावरण के प्रति भारतीय संस्कृति सदैव से सजग एवं क्रियाशील रही है। प्राचीन भारतीय संस्कृति 'आरण्यक संस्कृति' या 'तपोवनी संस्कृति' के नाम से जानी जाती है। भारतीय समाज पूर्णत: धर्मानुशासित रहा है, अत: पर्यावरण की शुद्धि और संरक्षण की दृष्टि से प्रकृति एवं प्राकृतिक संसाधनों के सन्तुलन की चिन्ता को धर्मिक आस्था से सम्बद्ध किया गया है। पृथ्वी, जल, वायु, वृक्ष, सूर्य, चन्द्रमा, अग्नि, वनस्पति एवं जीव-जन्तुओं को देव स्वरूप मानकर उनके संरक्षण के प्रति भावी पीढ़ी में चेतना का संचार किया जाता रहा है। ''वर्तमान समय में सांस्कृतिक पर्यावरण जैसे शब्द भी प्रयुक्त होते हैं। संस्कृति में समाज, व्यक्ति मानवीय संबंध, रीति-रिवाज, वेशभूषा, खान-पान साहित्य संगीत, कला, धार्मिक जीवन, पर्वोत्सव तथा परम्परा आदि समाहित है।''[3] इस दृष्टि से उत्तराखण्ड की सांस्कृतिक धरोहर उच्च कोटि की है जो प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप से पर्यावरण के प्रति समर्पण की भाव-भूमि प्रदान करती है। वस्तुत: वर्षभर मनाए जाने वाले व्रत, त्यौहार तथा पर्वोत्सव जलवायु परिवर्तन के साथ तादात्म्य स्थापित करते हुए पर्यावरणीय संरक्षण की चेतना को पीढ़ी दर-पीढ़ी हस्तान्तरित करते हैं।

शोध संचयन
SHODH SANCHAYAN
ISSN 2249-9180 (Online)
ISSN 0975-1254 (Print)
RNI No.: DELBIL/2010/31292

Bilingual journal of Humanities & Social Sciences

Half Yearly

Vol-3 Issue-1
15 Jan-2012

पर्यावरणीय चिन्तन और उत्तराखण्ड के लोक सांस्कृतिक सरोकार

डॉ0 प्रीति आर्या

असि0 प्रो0-हिन्दी, एस0 एस0 जे0 परिसर, अल्मोड़ा

www.shodh.net

''भारतीय उपद्वीप के लगभग सभी लोकोत्सवों का सम्बन्ध ऋतु परिवर्तन के साथ है। कृषि प्रधान देश होने के कारण ये उत्सव प्राय: कृषि के परिपक्व होने अथवा फसल काटे जाने के अवसरों पर मनाये जाते हैं यथा बैसाखी (पंजाब), मंजर (चम्बा), फुल्यांच (किन्नौर), लोसर (लाहुल) तिब्बत , बिहु (आयाम), पोंगल (दक्षिण भारत) बसन्त, हरियाली, होली आदि। कालान्तर में ऋतुविशेष के मास विशेष की तिथि विशेष के साथ आबद्ध कर दिये जाने के कारण इन उत्सवों को आर्य भाषा-भाषी क्षेत्र में 'त्योहार' (तिथिवार) कहा जाने लगा।''[4]उत्तराखण्ड में वर्षभर मनाए जाने वाले त्यौहारों की संख्या लगभग 50 है जिनमें से अधिकांश में मेलों का आयोजन होता है। इनमें से अधिकांश में उपवास एवं कुछ में जीव-जन्तुओं के संरक्षण, जल एवं पेड़- पौधों के संवर्द्धन तथा घर-आँगन व आस-पास की स्वच्छता का विशेष महत्त्व है। पर्यावरणीय दृष्टि से इन त्यौहारों एवं व्रतों का योगदान उल्लेखनीय है।

यहाँ की लोक संस्कृति में त्यौहार को ऋतु परिवर्तन के रूप में ही नहीं अपितु कृषि सम्बन्धी प्रकार्यों, उससे सम्बन्धित उत्सवों एवं पर्यावरण सम्बन्धी परिवर्तनों के रूप में भी संदर्भित किया जाता है। यहाँ चैत्र मास की संक्रान्ति को मनाया जाने वाला फूलदेई फूलों के उत्सव एवं नव वर्ष स्वागत रूप में मनाया जाता है। इस ऋतु में खिलने वाले पुष्पों जैसे बुरांस, प्योली, सिलफोड़ा, कुंज इत्यादि से बालिकाओं द्वारा द्वार पूजन किया जाता है।

''विषुवत संक्रान्ति या बिखौती के लिए लोक विश्वास है कि इसका सम्बन्ध वनस्पतियों से हैं इस ऋतु में फल एवं वनस्पतियों में पुष्प लगते हैं ऐसे में यदि इस दिन वर्षा हो जाए तो फूलों की विषाक्तता नष्ट हो जाती है और फल एवं फसल अच्छी होती है, अन्यथा सड़ने लगती है। इसी लिए इसे बिसू भी कहा जाता है।''[5] वर्षा के आगमन पर उत्तराखण्ड में हरियाली का प्रतीक 'हरेला' त्योहार मनाया जाता है। हरेले के दिन गाँवों में प्रत्येक परिवार आड़ू, पलम, अनार, अमरूद, दाड़िम इत्यादि पेड़ों एवं फूलों की टहनियों को रोपित करके अपने वृक्षों में वृद्धि करता है।

हरेले में वृक्षारोपण का विशेष महत्त्व है। मान्यता है कि इस दिन लगाए वृक्ष अवश्य जीवित रहते हैं। इसी के सापेक्ष होलिकोत्सव के दिन भी अनेक प्रकार के वृक्ष एवं वनस्पतियों का रोपण किया जाता है। पर्यावरण संरक्षण की दृष्टि से ये धार्मिक पर्व अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। उत्तराखण्ड की अर्थव्यवस्था का मुख्य घटक वन सम्पदा हैं वनों को न केवल उत्तराखण्ड अपितु भारतीय संस्कृति में भी देवतुल्य माना गया है। वन ही भूमि को मजबूती प्रदान करते हैं। ''वैदिक काल व उत्तर वैदिक काल में जब मनुष्य ने वेदों के अनुसार जीवन जीना प्रारम्भ किया तब प्रकृति को धर्म के साथ जोड़कर उसकी पूजा अर्चना की। अनेक वृक्ष पूजे गए इनमें आँवला, तुलसी, पीपल, वट, पद्म केला, आम आदि का विशेष महत्व था। वह विभिन्न यज्ञों में इन्ही वृक्षों की समिधा का इस्तेमाल करता था।''[6] आज भी समस्त धार्मिक कर्मकाण्ड इनके बिना अधूरे हैं।

उत्तराखण्ड की सांस्कृतिक विशेषता का एक मुख्य स्वरूप देवालयों एवं थान (छोटे-छोटे मन्दिर) के आस-पास वृक्ष लगाने की धर्मिक परम्परा के रूप में परिलक्षित होते हैं। यहाँ देवी-देवता के थान (मन्दिरों) के पास लगाए जाने वाले फलदार एवं छायादार वृक्षों को काटना पाप माना जाता है। ''किसी मन्दिर या थान के आस-पास छायादार या फलदार वृक्ष लगाने के मुख्यत: दो कारण हैं- किसी देवी-देवता की पूजादि करने आये श्रद्धालुओं के लिए छाया हेतु। दूरस्थ स्थान से ही मन्दिर की पहचान (निशान देही) हेतु। इसके साथ ही देवी-देवता के मन्दिर अथवा घर में पूजा-पाठ, यज्ञ-हवनादि से वातावरण शुद्ध होता है और रोग के जीवाणु नष्ट हो जाते हैं।''[7] वृक्षों का पूजन भी ऋतु परिवर्तन एवं मास विशेष पर वैज्ञानिक महत्त्व के अनुरूप होता है। इन वृक्ष पूजन व्रतोत्सवों में वटसावित्री, हरितालिका, आमलकी एकादशी, शिवरात्री, इत्यादि प्रमुख है। पीपल, वटवृक्ष, आम, श्रीफल, विल्ववृक्ष, पइंया (पद्म), आंवला एवं तिमिल वृक्षों के अतिरिक्त तुलसी, दूब, हल्दी व जौ इत्यादि अपनी औषधीय गुणों तथा पर्यावरण की शुद्धि के लिए महत्त्वपूर्ण हैं।

'वट सावित्री' के अवसर पर स्त्रियाँ अचल सौभाग्य देने वाले वट के वृक्ष की पूजा करती हैं। गुरूवार के दिन केले के वृक्ष को कल्पवृक्ष मानकर पूजा जाता है। अशोकाष्टमी के दिन अशोक वृक्ष की पूजा की जाती है। आँवले के वृक्ष में भगवान विष्णु का निवास मानकर आमलकी एकादशी में इसकी पूजा-परिक्रमा करके स्त्रियाँ सुहाग का वरदान मांगती है। आम के पत्ते, मंजरी, छाल व लकड़ी यज्ञ व अनुष्ठानों में उपयोग की जाती है। तुलसी को भगवान विष्णु की प्रिया मानकर इसका पूजन किया जाता है। यह औषधीय वृक्ष भी है। पीपल के वृक्ष में ब्रह्मा, विष्णु, महेश का वास माना जाता है।''[8] वैज्ञानिक दृष्टि से पीपल रात-दिन निरन्तर 24 घन्टे आक्सीजन देने वाला एकमात्र अद्भुत वृक्ष है। इसके निकट रहने से प्राणशक्ति बढ़ती है। इसकी छाया गर्मियों में ठण्डी, सर्दियो में गर्म रहती है। पीपल के पत्ते, फल आदि में औषधीय गुण होने के कारण यह रोग नाशक भी होता है।[9] 'शिवरात्री' के व्रत और श्रावन मास में विल्वपत्र से शिव की पूजा-अर्चना का विशेष महत्व है। शिवालयों के निकट विल्ववृक्ष अवश्य होते हैं। ''पइंया का वृक्ष लोक में अत्यधिक सम्मानीय है।

शोध संचयन
SHODH SANCHAYAN
ISSN 2249-9180 (Online)
ISSN 0975-1254 (Print)
RNI No.: DELBIL/2010/31292

Bilingual journal of Humanities & Social Sciences

Half Yearly

Vol-3 Issue-1
15 Jan-2012

पर्यावरणीय चिन्तन और उत्तराखण्ड के लोक सांस्कृतिक सरोकार

डॉ0 प्रीति आर्या

असि0 प्रो0-हिन्दी, एस0 एस0 जे0 परिसर, अल्मोड़ा

पइंया के नववृक्ष को देखकर लोक हृदय फ्रुल्लित हो उठता है। उसे उसमें देवत्व की अनुभूति होने लगती है।[10] इस वृक्ष को उत्तराखण्ड के निवासी पीपल एवं विल्व के समकक्ष पवित्र मानते हैं।

वृक्षों की पूजा-अर्चना एक ओर पातिव्रत्य धर्म का प्रतीक है वहीं दूसरी ओर पर्यावरण के प्रति संरक्षण का संकल्प भी। 'वन सम्पदा को सुरक्षित रखने के लिए उत्तराखण्ड के लोक जीवन में वन्य व्यवस्था की परम्परा आज भी जिन्दा हैं। वन लगाने व बचाने का कार्य लोगों में परम्परा व संस्कार रूप में था। प्रत्येक गाँव समुदाय अपने लिए किसी एक प्रजाति-बाँज या चौड़ी पत्ती वाले पेड़ो को अपनी बांजाणि मानकर पेड़ लगाते और उसकी रक्षा करते थे। वन गाँव की पंचायती (सामूहिक) सम्पदा माने जाते थे। वे गाँव की मिली-जुली धरोहर थे।'[11] यहाँ यह कहना समीचीन होगा कि वृक्ष तभी सुरक्षित रहेंगे जब उन्हें उनके जीवनोपयोगी जल प्राप्त होगा। कदचित् इसी अवधारणा ने उन धर्मिक परम्पराओं को जन्म दिया होगा, जिनमें नालों तथा पानी के अन्य संसाधनों को गन्दा एंव क्षति न पहुँचाना सम्मिलित था।

पानी के प्रति लोक मानस में सदैव से पवित्रता का भाव रहा है। अत: लोक में व्याप्त संस्कारों में पानी अथवा जल स्तवन का विशेष स्थान रहा है। उदाहरणत: नव विवाहिता वधू द्वारा गृह प्रवेश के समय जल के स्रोतों, नालों एवं धाराओं वर्तमान में नलों की पूजा-अर्चना कराना आदि इसे संरक्षित करने के सन्दर्भ में देखा जा सकता है। भारतीय संस्कृति की द्योतक गंगा नदी सर्वप्रथम उत्तराखण्ड की भूमि को ही पवित्र एवं सिंचित करती है। जिसके जल में व्याप्त औषधीय गुणों की पहचान सदियों पूर्व यहाँ के लोक मानस में विकसित थी। जल को स्वच्छ एवं निर्मल रखने के उद्देश्य से ही उसे संस्कारों से जोड़ा गया। गंगा दशहरा गंगा के पृथ्वी में अवतरित होने का पर्व है, जिससे इस दिन गंगा स्नान का विशेष महत्त्व है। 'गंगा की पूजा देवी के रूप में की जाती है। गंगा के मंदिर भी हैं। अन्य देवों की भाँति रोली, अक्षत, धूप, नैवेद्य आदि द्वारा नदी पूजन किया जाता है। यह प्राचीन परम्परा का अनुकरण है। नदियों के जल में स्नान करने से पाप नष्ट हो जाते हैं।'[12] ऐसी मान्यता हमें नदियों के प्रति पवित्र सोच को बनाए रखने में मदद करती है।

आधुनिक वैज्ञानिक परीक्षणों में गंगाजल पर किए गये शोध कार्यो से उसकी विशिष्टता के तथ्य पुष्ट हुए हैं। 'इसमें पर्याप्त लवण जैसे कैलशियम, पोटैशियम, सोडियम आदि पाये जाते हैं और 45 प्रतिशत क्लोरिन होता है जो जल में किटाणुओं को पनपने से रोकता है इसकी उपस्थिति के कारण पानी सड़ता नहीं है। इसकी अम्लीयता एवं क्षारीयता लगभग समान होती है। गंगा जल में शक्तिशाली किटाणु निरोधक तत्त्व क्लोराइड पाया जाता है। स्वास्थ्यवर्धक तत्त्वों, का बाहुल्य होने के कारण गंगाजल अमृत के तुल्य, सर्वरोगनाशक, पाचक, हृदय के लिए हितकर, आयु बढ़ाने वाला तथा त्रिदोष नाशक होता है।'[13]

मनुष्य के आरम्भ से ही पशु-पक्षी उसके सहचर रहे हैं। उनसे अपनत्व और भय के भाव ने पूजन की आधार-भूमि स्थापित की है। ''शेर देवी का और व्याघ्र नरसिंह का वाहन माना जाता है। कुत्ता उत्तराखण्ड में भैरव देवता का वाहन माना जाता है। अत: लोक में इसे सम्मान प्राप्त है। उत्तराखण्ड में भैरव देवता के अनेक मन्दिर हैं। 'गौ' को गढ़वाल-कुमाऊँ में ही नहीं अपितु सम्पूर्ण भारत में पूजन किया जाता है। गौमूत्र यहाँ गंगाजल की भाँति शुद्ध माना जाता है।''[14] आश्विन मास की संक्रान्ति को मनाया जाने वाला त्यौहार कुमाऊँ में खतडुवा और गढ़वाल में गै-त्यार (गायों का त्यौहार) इस दिन गायों, बैलों और भैसों को पूजा एवं श्रद्धाभाव से भरपेट घास खिलाने की परम्परा है। बैल को शिव के वाहन रूप में पूजा जाता है जो कृषि कार्य में विशेष सहायक है। दीपावली के अवसर पर गोवर्धन पूजा के दिन इन पशुओं का पूजन रोली का तिलक, सींगों में तेल एवं गले में पुष्प माला पहनाकर किया जाता है।

उत्तराखण्ड के लोक मानस में संक्रान्ति के गंगा स्नान का विशेष महत्त्व है। साथ ही मकर संक्रान्ति के दिन घुघुतिया का त्यौहार मनाया जाता है। इसे उतरैणी या उत्तरायणी भी कहा जाता है। इस दिन आटे से घुघुत नामक विशेष पकवान रात्रि में बनाया जाता है। दूसरे दिन प्रात: काल बच्चों द्वारा 'काले कौवा काले घुघुती माला खाले' कहकर कौवौं को बुलाया जाता है। यह पक्षियों के प्रति स्नेह और सुरक्षा का प्रतीक है। नागपंचमी नागों की पूजा का त्यौहार है। नाग को शिव का आभूषण मानकर देवता रूप में पूजा जाता है। पर्यावरण संतुलन के लिए भी ये अहम् होते हैं। अत: स्वच्छता एवं संगीत प्रेमी नागों के संरक्षण का प्रतीक यह त्यौहार श्रावण शुक्ल की पंचमी को पूरे भारत में मनाया जाता है। उत्तराखण्ड के लोक जीवन की विशिष्टता वर्ष भर छ: ऋतुओं और बारह माह में किसी न किसी त्यौहार या पर्वोत्सव का आयोजन है जो यहाँ की सांस्कृतिक धरोहर है।

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि मानव जीवन के लिए पर्यावरण का संरक्षण करना ही एक मात्र उपाय है। वर्तमान वैश्विक युग में बदलते सामाजिक एवं आर्थिक परिवेश से लोगों में पारम्परिक लोक संस्कृति के प्रति उदासीनता दिखाई देती है। लोक का सीधा संबंध प्रकृति से होता है, लोक मानस चूँकि उसकी गोद में जन्म लेकर फलता-फूलता है अत: उसके समस्त क्रियाकलाप प्रकृति से

शोध संचयन
SHODH SANCHAYAN
ISSN 2249-9180 (Online)
ISSN 0975-1254 (Print)
RNI No.: DELBIL/2010/31292

Bilingual journal of Humanities & Social Sciences

Half Yearly

Vol-3 Issue-1
15 Jan-2012

पर्यावरणीय चिन्तन और उत्तराखण्ड के लोक सांस्कृतिक सरोकार

डॉ0 प्रीति आर्या

असि0 प्रो0-हिन्दी, एस0 एस0 जे0 परिसर, अल्मोड़ा

www.shodh.net

प्रभावित होते हैं। इसी कारण विशेषत: ग्रामीण जीवन की सांस्कृतिक गतिविधियाँ पर्यावरण संरक्षण की भावना से जुड़ी हैं। यद्यपि पर्यावरण संरक्षण के लिए सरकारी एवं गैर सरकारी प्रयास समय-समय पर होते रहे हैं, तथापि उसके अपेक्षणीय परिणाम नहीं दिखाई दे रहे हैं। पर्यावरण संरक्षण की अवधारणा को बुद्धिजीवी वर्ग सम्मेलनों और न्यायिक कानून एवं नीति के रूप में प्रस्तुत करता है जबकी उसका क्रियान्वयन सामान्य वर्ग के माध्यम से होता है। निसंदेह पर्यावरण संरक्षण के लिए सरकारी प्रयास अथवा कानून बनाना ही पर्याप्त नहीं है अपितु इसके लिए प्रत्येक व्यक्ति को पर्यावरण संरक्षण हेतु मानसिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक रूप से सबल करने की आवश्यकता है। लोक सांस्कृतिक परम्पराओं को पुष्ट: एवं सुदृढ़ करने के साथ ही इन सरोकारों के प्रति भावी पीढ़ी को जागरूक एवं चेतनाशील करना होगा।

सन्दर्भ सूची:-

1- पुरवासी, वर्ष 28 (2007), अंक 28, पृ0- 23
2- कुरूक्षेत्र, जून 2006, सिंह करुण बहादुर- पर्यावरण संरक्षण, प्रकृति ही एक मात्र विकल्प, पृ0-14
3- भट्ट, डॉ0 दिवा - साहित्य की प्रतिध्वनियाँ, पृ0 - 25
4- शर्मा, प्रो0 डी0डी0 -उत्तराखण्ड के लोकासत्व एवं पर्वोत्सव, पृ0-52
5- वयोवृद्ध ग्रामीण से भेंटवार्ता पर आधारित।
6- सिन्हा, मेधा - पर्यावरण समस्या और समाधान, पृ0-237
7- बिष्ट, डा0 शेरसिंह - साहित्य एवं संस्कृति: चिन्तन के नये आयाम, पृ0-137
8- गंगराड़े डॉ0 प्रकाशचन्द्र - हिन्दूओं के रीति-रिवाज एवं मान्यताएं, पृ0-126
9- वही, पृ0-131
10- चन्दोला, डा0 सरला- उत्तराखण्ड का लोक साहित्य और जनजीवन, पृ0-83
11- पहाड़, नैनीताल, अंक 10, 1999 पृ0-268
12- चन्दोला, डा0 सरला- वही, पृ0-81
13- गंगराड़े डॉ0 प्रकाशचन्द्र - पूर्वोक्त पृ0-22
14- चन्दोला, डा0 सरला- वही, पृ0-93